मुखपृष्ठ

साहित्यसुधा

साहित्यकारों की वेबपत्रिका

साहित्यकारों की रचना स्थली

वर्ष: 2, अंक 35, अप्रैल(द्वितीय), 2018

आधुनिक सामाजिक संदर्भों में संत कबीर: प्रासंगिकता के निकष पर

प्रो शैलेंद्रकुमार शर्मा

सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हैं कोइ।
जिन्ह सहजै विषिया तजी, सहज कही जै सोइ॥

सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हैं कोइ।
जिन्ह सहजै हरिजी मिलै, सहज कही जै सोइ॥

मानवीय जीवन की सबसे बड़ी विडंबना है- चहुँ ओर व्यापती असहजता। उसी के चलते कई तरह की विसंगतियों और विद्रूपताओं का प्रसार होता आ रहा है। भारत की अछोर कवि माला के अद्‌वितीय कवि कबीर इस संकट से भली भांति परिचित थे, इसीलिए वे व्यावहारिक और आध्यात्मिक जीवन में सहज होने की पुकार लगाते हैं। उनका व्यक्तित्व और कर्तृत्व अत्यंत सहज है, किन्तु जब वे देखते हैं कि संसारी जीव इस मार्ग से बहुत दूर चले आए हैं, तब वे क्रांतिकारी चेतना से सम्पन्न हो आमूलचूल परिवर्तन के लिए तत्परता दिखाते हैं। आज के असहजता से भरे विश्व में उनकी प्रासंगिकता और अधिक बढ़ती जा रही है। वे सहजता के साथ सत्य और सदाचरण पर विशेष बल देते हैं:

सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदय सांच है, ताके हिरदय आप।।

कबीर कोरे शास्त्र ज्ञान पर नहीं, अपितु आचरण की शुद्‌धता पर बल देते है,

तू कहता कागद की लेखी मैं कहता आंखिन की देखी।
मैं कहता सुरझावन हारी तू राखा उरझोय रे।।
ग्याँनी मूल गँवाइया, आपण भये करंता।
ताथै संसारी भला, मन मैं रहे डरंता॥ (कामी नर कौ अंग)

यह ठीक है कि पठन पाठन उत्तम है किंतु प्रेम से बढ़कर वह कदापि नहीं हो सकता।

मैं जान्यूँ पढ़िबौ भलो, पढ़िवा थें भलो जोग।
राँम नाँम सूँ प्रीति करि, भल भल नींदी लोग॥
कबिरा पढ़िबा दूरि करि, पुस्तक देइ बहाइ।

बांवन अषिर सोधि करि, ररै ममैं चित लाइ॥
कबीर पढ़िया दूरि करि, आथि पढ़ा संसार।
पीड़ न उपजी प्रीति सूँद्द, तो क्यूँ करि करै पुकार॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ।
एकै आषिर पीव का, पढ़ै सु पंडित होइ॥
कथनी और करनी की एकता कबीर की शक्ति है। इसीलिए जब वे देखते हैं कि संसार में इन दोनों के बीच फाँक बनी हुई है, तब वे यह कहने को मजबूर होते हैं कि जो मनुष्य कहनी के अनुरूप आचरण नहीं करता है, वह पशुतुल्य है। जैसा कहे वैसा ही आचार रखें तो परब्रह्म का नैकट्य सहज सम्भव है:
जैसी मुख तैं नीकसै, तैसी चालै चाल।
पारब्रह्म नेड़ा रहै, पल में करै निहाल॥
जैसी मुष तें नीकसै, तैसी चालै नाहिं।
मानिष नहीं ते स्वान गति, बाँध्या जमपुर जाँहिं॥
करता दीसै कीरतन, ऊँचा करि करि तूंड।
जाँणै बूझे कुछ नहीं, यौं ही आँधां रूंड॥
कबीर ने सामाजिक जड़ता को अंतर्बाह्य क्रान्ति और विद्रोह के माध्यम से दूर करने का प्रयास किया। उनका विद्रोही व्यक्तित्व तर्क और ज्ञान आधारित समाज के विस्तार के साथ आगे बढ़ते आधुनिक दौर में विशेष प्रभावित करता है। उन्होंने अपने समय में निर्भीकतापूर्वक सामाजिक परिवर्तन का जो प्रयास किया, वह तो अद्‌वितीय है ही, वर्तमान में और अधिक काम्य हो गया है। वर्तमान युग के तथाकथित समाज सुधारक और उपदेशक भी ऐसा साहस नहीं दिखा सकते जो कबीर ने धार्मिक उन्माद से ग्रस्त तत्कालीन युग में दिखाया था। एक सच्चे युग-पुरोधा के भांति उन्होंने परस्पर विद्‌वेष, अंधविश्वास, रूढ़ियों, अनीति-अनाचारों एवं जड़ता पर प्रबल प्रहार करते हुए समाज को सही दिशा दी। प्रश्न यह है कि भूमंडलीकरण और उपभोक्तावादी दुनिया में उनकी विलक्षणता और सार्वभौमिक सन्देश से हम नई पीढ़ी को किस तरह जोड़ें, जो उनके लिए जीवन की गुत्थियों को सुलझाकर सहज मार्ग सुझा सकती है। वस्तुतः वही व्यक्ति किसी भी दौर में रास्ता दिखा सकता है जो स्वयं युग प्रवाह को जानने के साथ उसे सही दिशा में मोड़ने का साहस करता है। कबीर ऐसे ही रचनाकार थे, अपने युग के प्रति पूर्ण जागरूक और उसके प्रतिपक्ष को रचने के लिए तत्पर। कबीर जैसा निर्भय व्यक्तित्व पूरी परंपरा में दूसरा दिखाई नहीं देता है। वे तो घर फूंककर तमाशा देखने वालों में थे। उनकी ऊर्ध्वबाहु घोषणा थी:
कबीरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।
जो घर फूंके आपना, चले हमारे साथ।।
कबीर का जन्म ऐसे समय में हुआ था, जब समाज अनेक बुराइयों से ग्रस्त था। छुआछूत, अंधविश्वास और रूढ़िवाद का बोलबाला था। धार्मिक पाखंड और विविध संप्रदायों के बीच आपस

में वैमनस्य चरम पर था। धर्म के ठेकेदार अपने स्वार्थ की रोटियां धार्मिक कट्टरता एवं उन्माद के चूल्हे पर सेंक रहे थे। तब कबीर ने उसका डटकर विरोध किया। कबीर ने राम - रहीम, करीम - केशव, महादेव - महंमद की एकता पर बल दिया। संपूर्ण समाज को एकता के सूत्र में बांधने का समर्थ प्रयास किया। जब दोनों का मार्ग एक ही है तो परस्पर विरोध कैसा:

हिंदू तुरक की एक राह है सतगुरु यहै बताई।

कबीर के व्यक्तित्व और विचारों का मूर्त रूप उनके साहित्य में उपस्थित है। नाभादास ने अपने भक्तमाल के दो छप्पयों में कबीर के विषय में महत्त्वपूर्ण संकेत किए हैं। वे रामानन्द के जग मंगलकारी शिष्यों में कबीर की परिगणना कुछ इस तरह करते हैं:

श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जगतरन कियौ।
अनन्तानन्द कबीर सुखा सुरसुरा पद्मावति नरहरि।
पीपा भामानन्द रैदास धना सेन सुरसरि की धरहरि।।
औरों शिष्य प्रशिष्य एक तैं एक उजागर।
जग मंगल आधार भक्ति दशधा के आगर।।
बहुत काल वपु धारिकै प्रणत जनत को पार दियौ। श्री रामानन्द रघुनाथ . . . .

स्वयं कबीर भी ऐसे परिवर्तनकारी गुरु और साधुजन की महिमा का बखान करते नहीं थकते हैं:

हम भी पाहन पूजते, होते रन के रोझ।
सतगुर की कृपा भई, डार्या सिर थैं बोझ॥
जेती देषौं आत्मा, तेता सालिगराँम।
साधु प्रतषि देव हैं, नहीं पाथर सू काँम॥

एक छप्पय में नाभादास कबीर की वाणी की विलक्षणता, जैसे उनके द्वारा स्थापित भक्ति की विशिष्टता, योग, यज्ञ, व्रत और दान की तुच्छता को रेखांकित करते हैं। कबीर द्वारा हिन्दू और तुर्क दोनों को सद्धर्म का बोध कराने के लिए प्रमाण रूप रमैनी, सबदी और साखी की रचना, भक्ति विमुख धर्म को अधर्म मानना, योग, यज्ञ, व्रत आदि को भक्ति के बिना अकारथ कहना, निरन्तर उद्यमशील रह कर भक्तिपथ पर चलना, वर्ण आधारित भेद का निषेध जैसे अनेकानेक परिवर्तनकारी प्रयास भी नाभादास की निगाह में महत्त्वपूर्ण थे:

कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरस की।
भक्ति विमुख जो धर्म सो अधरम कर्म गायो।
जोग जग्य ब्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो।।
हिन्दू तुरक प्रमान रमैनी शब्दी साखी।
पक्षपात नहिं बचन सब ही के हित की भाखी।।
आरूढ दसा ह्वै जगत पर मुख देखी नाहिन भनी।
कबीर कर्म न राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी।।

वे आगे लिखते हैं:

अति ही गंभीर मति सरस कबीर हियो।
लियौ भक्ति भाव जाति पाँति सब टारियै।।
बीनै लानौ बानौ, हियै राम मंडरानौ।
कहि कैसे कै बखानौं, वह रीति कछु न्यारियै।।
उतनोई करै जामै तन निरवाह होय।
भाय गयी और बात भक्ति लागी प्यारियै।।

कबीर एक ओर विसंगतियों से भरे समाज के आमूलचूल परिवर्तन के लिए तत्परता दिखाते हैं, तो दूसरी ओर उसी समाज के प्रति स्नेह के रहते उसे नए रूप में ढालने का उपक्रम भी करते हैं। इस दृष्टि से कबीर के प्रतिपाद्य को दो भागों में देखा जा सकता है, पहला रचनात्मक और दूसरा आलोचनात्मक। रचनात्मक हिस्से में वे नीतिज्ञ हैं। इस रूप में वे मानव मात्र को सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा, दया, क्षमा, संतोष, उदारता जैसे गुणों को अंगीकार करने का मार्ग सुझाते हैं। आलोचनात्मक हिस्से में वे समाज में व्याप्त धार्मिक पाखंड, जातिप्रथा, मिथ्याडंबर, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों का खंडन करते हैं। उन्होंने मानवीय सभ्यता से जुड़े प्रायः सभी क्षेत्रों में व्याप्त सामाजिक बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी बात निर्भीकता से कही। हिंदुओं और मुसलमानों को उनके पाखण्ड के लिए फटकार लगाई। साथ ही उन्हें सच्चे मानव धर्म को अपनाने के लिए प्रेरित किया। वे समस्त प्रकार की भ्रांतियों को निस्तेज करते हैं-

सेवैं सालिगराँम कूँ, माया सेती हेत।
बोढ़े काला कापड़ा, नाँव धरावैं सेत॥
जप तप दीसै थोथरा, तीरथ ब्रत बेसास।
सूवै सैबल सेविया, यों जग चल्या निरास॥
तीरथ त सब बेलड़ी, सब जग मेल्या छाइ।
कबीर मूल निकंदिया, कोण हलाहल खाइ॥
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाँणि।
दसवाँ द्वारा देहुरा, तामै जोति पिछाँणि॥
कबीर दुनियाँ देहुरै, सीस नवाँवण जाइ।
हिरदा भीतर हरि बसै, तूँ ताही सौ ल्यौ लाइ॥

कबीर का संघर्ष व्यर्थ नहीं गया, उनके अपने समय में और परवर्ती समय पर भी उनका गहरा प्रभाव पड़ा। अकबर के समय में अबुल फजल अल्लामी ने आइन-ए-अकबरी की रचना की थी। इस ग्रंथ में कबीर को मुवाहिद अर्थात एकता प्रेमी कहा गया है। इस ग्रन्थ में कबीर के विषय में लेखक ने दो बार जिक्र किया है। उनका परिचय देते हुए लेखक का कथन है, कबीर मुवाहिद यहां विश्राम करते हैं और आज तक उनके कारण और कृत्यों के सम्बन्ध में अनेक विश्वस्त जनश्रुतियाँ कहीं जाती हैं। वे हिन्दू और मुसलमान दोनों के द्वारा अपने उदार सिद्धांतों और पवित्र जीवन के कारण पूज्य थे। एक और स्थान पर लेखक का कथन है कि कोई कहते हैं कि रतनपुर (सूबा अवध) में कबीर की समाधि है जो ब्रह्मैक्य का मण्डन करते थे। आध्यात्मिक

दृष्टि का द्वार उनके सामने अंशतः खुला था। उन्होंने अपने समय के सिद्धांतों का भी प्रतिकार कर दिया था। आइन-ए-अकबरी के इन कथनों से जाहिर होता है कि कबीर का चिंतन समदृष्टिपूर्ण था। वे दोनों ही वर्गों में समादृत थे। फिर उदार सिद्धांतों के पोषण के कारण उनका व्यापक प्रभाव लोक में व्याप्त था।

कबीर की विद्रोह चेतना उनकी अपनी सामाजिक स्थिति की स्वाभाविक उपज थी, इसे रेखांकित करते हुए कबीर की 'भूमिका' में द्विवेदी जी ने लिखा भी है: "वे दरिद्र और दलित थे इसलिए अंत तक वे इस श्रेणी के प्रति की गई उपेक्षा को भूल न सके। उनकी नस-नस में इस अकारण दंड के विरुद्ध विद्रोह का भाव भरा था।" कबीर इसीलिए हिंदुओं को फटकार लगाते हुए कहते हैं, तुम स्वयं को श्रेष्ठ समझते हो, अपना घड़ा किसी को छूने नहीं देते, किंतु तब तुम्हारी उच्चता कहां चली जाती है, जब वेश्यागमन करते हो? अस्पृश्यता के दंश का प्रतिकार करते हुए वे कहते हैं -

हिंदू अपनी करे बड़ाई गागरी छुअन न देई।
वेश्या के पायन तर सोवैं यह देखो हिंदुआई।।

या फिर

जो तू बांभन बांभनी जाया, आन बाट से क्यों नहीं आया।

वे मुस्लिमों से भी गहरे प्रश्न करते हैं:

जो तू तुरक तुरकिनी जाया, भीतर खतना क्यों न कराया?

कबीर कोरे समाज सुधारक नहीं हैं और न मध्य मार्ग पर चलने वाले समन्वयकारी। द्विवेदीजी ने इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए लिखा भी है कि "जो लोग कबीरदास को हिंदू-मुस्लिम धर्मों का सर्व-धर्म समन्वयकारी सुधारक मानते हैं, वे क्या कहते हैं; ठीक समझ में नहीं आता। कबीर का रास्ता बहुत साफ था। वे दोनों को शिरसा स्वीकार कर समन्वय करनेवाले नहीं थे। समस्त बाह्याचारों के जंजालों और संस्कारों का विध्वंस करनेवाले क्रांतिकारी थे। समझौता उनका रास्ता नहीं था। इतने बड़े जंजाल को नाहीं कर सकने की क्षमता मामूली आदमी में नहीं हो सकती। (कबीर, पृ.192) उन्होंने निरी मूर्ति-पूजा का खंडन किया तो मस्जिद में उसकी तलाश को भी अर्थहीन माना। उनका नजरिया साफ है, जो मन-मंदिर में बसा है उसकी तलाश में इधर उधर भटकना अकारथ ही तो जाएगा:

मोकों कहां ढूंढे बंदे मैं तो तेरे पास में।
ना मंदिर में ना मस्जिद में, ना काबे-कैलास में।।

या फिर

दुनिया ऐसी बावरी पाथर पूजन जाय।
घर की चकिया कोई न पूजै जेहि का पीसा खाय।।

कबीर ने मुस्लिमों के पाखंड का खंडन भी जोरदार शब्दों में किया है:

कांकर-पाथर जोरि कै मसजिद लई चुनाव।

ता चढि मुल्ला बांग दे क्या बहिरा हुआ खुदाय।।
यहु सब झूठी बंदिगी, बरियाँ पंच निवाज।
साचै मारै झूठ पढ़ि, काजी करै अकाज॥
कबीर काजी स्वादि बसि, ब्रह्म हतै तब दोइ।
चढ़ि मसीति एकै कहै, दरि क्यूँ साचा होइ॥
कबीर ने हिंसा और घृणा का विरोध हर स्तर पर किया :
बकरी पाती खात है ताकी काढी खाल।
जे नर बकरी खात है तिनकौं कौन हवाल।।
जब सामाजिक विसंगतियां नासूर बन जाती हैं, तब बगैर व्यंग्य प्रहार किए उनका समाधान सम्भव नहीं होता है। कबीर इसीलिए एक गहरे व्यंग्यकार की भूमिका निभाते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर के व्यंग्यकार रूप को प्रस्तुत करते हुए यह घोषणा की, "सच पूछा जाय तो आज तक हिंदी में ऐसा जबरदस्त व्यंग्य लेखक पैदा ही नहीं हुआ। उनकी साफ चोट करने वाली भाषा, बिना कहे भी सब कुछ कह देने वाली शैली और अत्यंत सादी, किंतु अत्यंत तेज प्रकाशन भंगी अनन्य असाधारण है। हमने देखा है कि बाह्याचार पर आक्रमण करनेवाले संतों और योगियों की कमी नहीं है, पर इस कदर सहज और सरल ढंग से चकनाचूर कर देने वाली भाषा कबीर के पहले बहुत कम दिखाई दी है। व्यंग्य वह है, जहाँ कहने वाला अधरोष्ठों में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता हो।" कबीर कड़े व्यंग्यात्मक आघात के साथ मनुष्यजनित समस्याओं और उन तमाम बाह्याचारों की ख़बर लेते हैं, जिनके रहते मनुष्य आध्यात्मिक प्यास को बुझाने में असमर्थ ही रहता है।
देव पूजि हिंदू मुये तुरक मुये हज जाई।
जटा बांधी योगी मुये राम किनहू नहीं पाई।।
पाथर ही का देहुरा, पाथर ही का देव।
पूजणहारा अंधला, लागा खोटी सेव॥
कबीर गुड कौ गमि नहीं, पाँषण दिया बनाइ।
सिष सोधी बिन सेविया, पारि न पहुँच्या जाइ॥
हम भी पाहन पूजते, होते रन के रोझ।
सतगुर की कृपा भई, डार्या सिर थैं बोझ॥
कबीर की विलक्षणता को दृष्टिगत रखते हुए आचार्य द्विवेदी ने यह कहने का साहस किया था, "हिंदी साहित्य के हजारों वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में यह व्यक्तित्व केवल एक ही प्रतिद्वन्द्वी जानता है, तुलसीदास।" (कबीर, पृ. 222) द्विवेदी जी के "कबीरदास बहुत कुछ को अस्वीकार करने का अपार साहस लेकर अवतीर्ण हुए थे।" (पृ. 7) तो 'कबीर' के हजारीप्रसाद जी में भी यह साहस कूट कूट कर भरा था। आचार्य शुक्ल ने भी अपने इतिहास के संशोधित और परिवर्धित संस्करण (1940) में

इतना तो स्वीकार कर ही लिया कि "मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्मगौरव का भाव जगाया।" (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 65)

कबीर की भाषा उसी लोक का रंग लिए हुए है, जिसका वे सहज हिस्सा हैं। उन्होंने व्यापक लोक से इस तरह का रिश्ता बना लिया है कि कबीर की लोक से और लोक को कबीर से विलग करके नहीं देखा जा सकता है। काशी के पांडित्य से मंडित परिवेश में 'संसकिरत है कूपजल भाखा बहता नीर' कहने का उनका साहस साभिप्राय है ही, लोक की आवाज़ भी है। द्विवेदी जी उनके इस सोद्देश्य कथन के संदर्भ में लिखते हैं, "वे साधना के क्षेत्र में युग गुरु थे और साहित्य के क्षेत्र में भविष्य स्रष्टा। संस्कृत के 'कूपजल' को छुड़ाकर उन्होंने भाषा के 'बहते नीर' में सरस्वती को स्नान कराया। उनकी भाषा में बहुत सी बोलियों का मिश्रण है; क्योंकि भाषा उनका लक्ष्य नहीं था और अनजाने में वे भाषा की सृष्टि कर रहे थे।" (पृ. 98) दिशा दिशाओं में कबीर की वाणी के सम्प्रसार का एक बड़ा कारण इस तरह की गतिशील भाषा है, जो लाख कोशिशों के बावजूद बनाई नहीं जा सकती, अनायास बन जाती है।

कबीर के साहित्य में उनके अपने समय की ही नहीं, काल प्रवाह में उभरती अनेक विसंगतियों से मुकाबले का रास्ता साफ नजर आता है। इसीलिए वे जितने अपने समय में प्रासंगिक थे, उससे कम आज नहीं होंगे। कबीर की पीड़ा में समूचे समाज की पीड़ा समाहित है, जिसके बिना कोई भी कवि बड़ा कवि नहीं बन सकता है:

सुखिया सब संसार है, खाये अरु सोवे।
दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोवे।।

लोक की पीड़ा से त्रस्त कबीर ऐसे जीवन मूल्यों की तलाश का प्रयास करते हैं, जिनके द्वारा आदमी-आदमी को विभाजित करने वाली दीवारों को ध्वस्त किया जा सके। मानवनिर्मित वर्ण, जाति, धर्म, रंग, नस्ल के नाम पर टुकड़े-टुकड़े हुई मानवीय एकता का पुनर्वास हो जा सके। प्रेम, सत्य, अहिंसा, विनय, करुणा, कृतज्ञता, समर्पण, आत्मगौरव जैसे उदात्त मूल्यों की पुनर्स्थापना हो, जिनकी आवश्यकता प्रत्येक देश और काल के समाज को बनी रहेगी। कबीर की दृष्टि में प्रेम की पीड़ा में ही सभी प्रकार के विलगाव और विभेद की औषधि है। विश्वव्यापी हिंसा, परस्पर भेद, अशांति, युद्ध के बीच कबीर इसीलिए बार बार याद आते हैं।

कबीर पढ़िया दूरि करि, आथि पढ़ा संसार।
पीड़ न उपजी प्रीति सूँद्द, तो क्यूँ करि करै पुकार॥

कृपया रचनाकार को मेल भेज कर अपने विचारों से अवगत करायें